ResearchGate

See discussions, stats, and author profiles for this publication at: https://www.researchgate.net/publication/324151552

□□□□□□□ □□□□□ □□ □□□ □□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□□□□□

Research · September 2017

CITATIONS
0

READ
1

1 author:

Bhagawati Paraksh Sharma
Pacific University India
254 PUBLICATIONS **0** CITATIONS

SEE PROFILE

All content following this page was uploaded by Bhagawati Paraksh Sharma on 02 April 2018.

The user has requested enhancement of the downloaded file.

पण्डित दीनदयाल जी प्रणीत एकात्म मानव दर्शन

समावशी विकास के लिए एकात्म चिन्तन

प्रोफेसर भगवती प्रकाश शर्मा*

भारत जैसी अनेक विविधताओं से युक्त अर्थव्यवस्था का संचालन किसी भी पश्चिमी औद्योगिक देश अथवा किसी साम्यवादी देश के अंधानुकरण से सम्भव नही हैं। प. दीनदयाल उपाध्याय का तब स्पष्ट मत था कि य्रो–अमेरिकी पूंजीवाद या तत्कालीन सोवियत संघ प्रणीत साम्यवाद क अनुकरण से भारत जैसे देश क विशाल जन–समाज के योगक्षेम की व्यवस्था सम्भव नही है। उनके द्वारा उद्घोषित ''हर हाथ को काम व हर खेत को पानी'' का ध्येय वाक्य ही भारत को समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करा सकता है। भारत द्वारा स्वाधीनता के बाद साढ़े चार दशक तक अपनायी मिश्रित अर्थव्यवस्था व उसके बाद 1991 से अपनायी विदेशी निवेश प्रोत्साहन की नीतियों के कारण आज देश अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहा है। उन सभी समस्याओं एवं सम्पूर्ण विश्व के लिये भी, भारतीय सनातन मूल्यों से अनुप्राणित व दीनदयाल जी द्वारा व्याख्यायित, **एकात्म मानव दर्शन** का विचार सभी आर्थिक, सामाजिक व परिस्थितिकीय समस्याओं का समाधान कर सकता है।

आज स्वाधीनता के 70 वर्ष बाद भी हमारे देश में बेरोजगारी, कुपोषण जैसी उनके द्वारा तब पांच दशक पूर्व इंगित समस्याएँ पर्ववत मुहँ बायें खड़ी है। सोवियत संघ तो 1989 में 14 टुकडों में विभक्त हो गया था व अमेरिको अर्थव्यवस्था भी 2008 के मेल्टडाउन के बाद आज भी सम्हल नही पायी है। इसलिये आज के परिवेश में अब सर्वाधिक उपयोगी विचार, दीनदयाल जी का 'एकात्म मानव दर्शन' ही है। आज तेजी से बढ़ती बेरोजगारी, रोजगार विहीन आर्थिक वृद्धि, तेजी से बढ़ रही आर्थिक विषमता, जनता में व्यापक स्तर पर कुपोषण, उच्च शिशु मृत्यु दर, बढ़ती कृषि समस्याओं के बीच किसानों की आत्महत्याओं जैसी समस्यओं का निवारण, सकल केवल घरेल उत्पाद (जी.डी.पी.) वृद्धि से सम्भव नही है। देश की 52% जनसंख्या तो कृषि पर निर्भर है, जिसका आज देश के सकल उत्पादन में मात्र 14% अंश रह गया है व उसकी (कृषि की) औसत वार्षिक वृद्धि दर 3 प्रतिशत से भी न्यून है। उद्योगों पर भी आज आज देश को 25% जनसंख्या निर्भर है, और उनकी भी आज औसत वार्षिक वृद्धि दर 3.5% ही है। सेवाओं पर जहाँ मात्र 22% जनसंख्या निर्भर है, का आज देश के सकल घरेलु उत्पाद में 62 प्रतिशत योगदान हो है व उनकी वृद्धि दर भी 12–15% होने से ही हमारी सकल वार्षिक वृद्धि दर 6.5–7.5 प्रतिशत हो जाती है। लेकिन, वास्तव में देश की तीन चौथाई जनसंख्या के लिये तो आज औसत वृद्धि दर 1.5–3.5% ही रह जाती है। इसके अतिरिक्त, आज भारत तो विश्व का दूसरा सर्वाधिक आर्थिक विषमता युक्त देश बन गया है, जहाँ देश की 58% सम्पदा मात्र 1% जनता के स्वामित्व व नियंत्रण में है। जापान में शीर्ष 1% जनसंख्या का अधिकार वहाँ कि मात्र 22% सम्पदा पर ही है। आज देश में जहाँ उच्च शिशु मृत्यु दर, व्यापक कुपोषण, देश के उद्योग, व्यापार व वाणिज्य पर विदेशी कम्पनियाँ का बढ़ता नियंत्रण, रोजगार विहीन आर्थिक वृद्धि, शिक्षा व चिकित्सा सुविधायें की अपर्याप्तता, किसानों की आत्महत्या, कृषि उत्पादकता में पिछड़ापन जैसी समस्याओं पर विचार करें तो स्वाधीनता के 70 वर्ष बाद भी देश गम्भीर आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहा है। वैश्विक विनिर्माणी उत्पादन (वर्ल्ड मेन्यूफेक्चरिंग) में भारत का अंश आज मात्र 2.1 प्रतिशत है, जबकि चीन का अंश आज 22 प्रतिशत है।

देश की अर्थव्यवस्था, ऐसी सारी विसंगतियों से मुक्त रह, इस हेतु ही दीनदयाल जी ने तब पाँच दशक पूर्व 'एकात्म अर्थनीति' का प्रतिपादन करने के साथ ही समग्र, समावेशी व धारणक्षम अर्थात टिकाऊ विकास के साथ ही विश्व मंगल के पावन लक्ष्य–साधन हेतु, ''एकात्म मानव दर्शन'' की

***अध्यक्ष, पेसिफिक उच्चतर शिक्षा एवं अनुसंधान अकादमी विश्वविद्यालय, उदयपुर**

Email ID : bpsharma131@yahoo.co.in

अवधारणा का निरूपण किया था, वह आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। दीनदयाल जी तब यह प्रश्न करते थे कि तब समग्र विश्व में चल रही अर्थनीति ने विकास में क्या योगदान किया है? वे स्पष्ट कहते थे कि आज की उत्पादन–वृद्धि में मर्यादाहीन स्पर्धा तथा असीम उपाभोग की लालसा के कारण अमरीका धरती की प्राकृतिक सम्पदा का निरंकुश उपयोग करते हुए सारे विश्व के सम्मुख भारी पर्यावरण संकट खड़ा कर रहा है। उनका यह भी कथन अमरीको "भोगवाद आज विश्व के 42 प्रतिशत अल्युमिनियम, 44 प्रतिशत कोयला, 33 प्रतिशत तांबा, 28 प्रतिशत लोहा, 63 प्रतिशत प्राकृतिक गैस, 33 पेट्रोलजन्य पदार्थ, 24 प्रतिशत टिन, 38 प्रतिशत निकिल जैसे पुननिर्मित न किये जा सकने वाले खनिजों का नाश कर रहा है। उनका कथन था कि भोगवाद व समृद्धि के लालच में ही इतनी बड़ी मात्रा में प्राकृतिक सम्पदा को नष्ट करने वाले अमरीका की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या की मात्र 5.6 प्रतिशत ही है।" आज वही विनाश लीला चीन खड़ी कर रहा है जो कोयले सहित विश्व की आधे से अधिक खनिजों को अकेले ही दोहन कर रहा है और विश्व की आधी से अधिक कार्बन डाई ऑक्साइड सहित सारी प्रदूषणकारी ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन कर विश्व में सर्वाधिक प्रदूषण फैला रहा है।

एकात्म मानव दर्शन : अनुकूलतम समाधान

आज की विषमता पूर्ण वैश्विक परिस्थितियों में दीनदयाल जी द्वारा प्रतिपादित व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, जीवसृष्टि, प्रकृति व समष्टि में सामंजस्य का एकात्म मानव दर्शन भारत ही नही, समग्र विश्व के लिये विकास का सर्वग्राह्य विचार है। वस्तुतः यह एकात्म अर्थनीति का दर्शन उनके वृहत्तर 'एकात्म मानव दर्शन' पर आधारित है, जो मनुष्य का विचार केवल 'आर्थिक मानव' व उसकी भौतिक आवश्यकताओं के एकांगी दृष्टिकोण पर ही विचार न करते हुए जीवन के समग्र पहलुओं का, यथा व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूपी चतर्विध पुरूषार्थो की साधना का निरूपण करता है। साथ ही परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व सहित एकात्म समष्टो का भी विचार करन वाला मानव इस दर्शन का केन्द्र बिन्दु माना है।

अर्थ का अभाव व प्रभाव दोनों अनुचित :

अर्थ का अभाव व अतिरेक (अर्थात अनुचित प्रभाव), दोनों का ही दीनदयाल जी ने निषेध किया है। इस संबंध में दीनदयाल जी, आचार्य चाणक्य के इस कथन को उद्धृत करते थे कि – ''सुखस्य मूलम् धर्मः, धर्मस्य मूलम् अर्थः''। सुख धर्ममूलक है और धर्म का मूल अर्थ है। भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण रहा है कि व्यक्ति एवं समाज का भरण– पोषण एवं उनकी भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होने वाली व्यवस्था में निहित मूल भाव धर्म है। धर्म की पालनार्थ अर्थ भी आवश्यक है अर्थ के बिना व्यक्ति धर्म पर टिक नही सकेगा। यह बात व्यक्ति और समाज दोनों पर लागू होती है। अर्थ के अभाव के कारण व्यक्ति के लिए कर्तव्यरूप धर्म का पालन करना भी कठिन हो जाता है। 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' वाली उक्ति के अनुसार उसके पैर अनैतिक मार्ग पर पड़ सकते हैं। इसलिये अर्थ का दूसरी ओर अर्थ का जीवन पर अनुचित प्रभाव भी नही होना चाहिये। जीवन व मनोंभावों पर अर्थ के अत्याधिक प्रभाव के कारण भी धर्म का ह्रास होता है। सम्पत्ति के इस प्रभाव का पाश्चात्यों ने विचार ही नही किया है। अर्थ के प्रभाव का अर्थ स्पष्ट करते हुए प. दीनदयाल जी कहते है, प्रत्यक्ष सम्पत्ति अथवा उसकी सहायता से प्राप्त होने वाली वस्तुओं एवं भोग–विलासों में आसक्ति अनैतिकता की सीमा तक भी निर्मित हो सकती है, तो उसे ही सम्पत्ति के प्रभाव का लक्षण माना जाता है। जिस व्यक्ति को केवल सम्पत्ति का लालच होता है वह देश, घर्म, मानव–जीवन के परमसुख आदि महत्वपूर्ण बातों को भुला देता है। इस प्रकार सम्पत्ति के लोभ का शिकार विषयासक्त व्यक्ति विवेकहीन या नैतिकता विहीन बन सकता है तथा अपना और समाज का पतन चूंकि विषय–भोग पर सीमा या मर्यादा है तो नही होती, ऐसा व्यक्ति और समाज अंत में नष्ट हो जाते है। इसलिये अर्थ का अभाव भी नहीं होना चाहिये और प्रभाव भी नहीं होना चाहिये। इस बात व्यक्ति व राष्ट्र दोनों पर लागू होती है।

उचित अर्थायाम व आर्थिक व्यवहारों का तक सगंत नियमन

अर्थ (सम्पत्ति) के अभाव एवं प्रभाव इन दोना से ही मानव जीवन व समाज जीवन को निस्पृह या मुक्त रखकर समाज में सम्पत्ति के अर्जन, निवेश व व्यय के बारे में एक योग्य, तर्कसंगत व मूल्यपरक व्यवस्था निर्मित करने को भारतीय संस्कृति में अर्थायाम कहा गया है। अर्थ का जीवन में उचित नियमन व इस संबंध में योग्य एवं सुस्पष्ट मर्यादापूर्वक अर्थ के उत्पादन, स्वामित्व, वितरण तथा भोग की समुचित और संतुलित व्यवस्था ही अर्थायाम के प्रमुख अंग है। अतः अर्थायाम का विचार करते समय नैतिकता व न्यायपरकता आदि सब बातों का भी विचार करना होगा।

विकास की भारतीय अवधारणा आधारित – एकात्म अर्थनीति

वस्तुतः दीनदयाल जी का कथन था कि एकात्म अर्थनीति व एकात्म मानव दर्शन कोई नया विचार न होकर हमारे भारतीय सनातन विचार की सामायिक व्याख्या है। हमारी सनातन भारतीय सनातन आर्थिक विचारधारा अग्रानुसार है :–

(अ) विकास की भारतीय अवधारणा : विकास की भारतीय अवधारणा सर्व जन हिताय, सर्वजन सुखाय के अनुरूप 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे व्यापक कल्याण के उपनिषद वाक्यों के अनुरूप है। इसमें मानव मात्र के त्रिविध कष्टों से निवृत्ति के साथ उसके योगक्षेम में, इस प्रकार अभिवृद्धि का निर्देश है, कि सम्पूर्ण जीव सष्टि व पर्यावरण में भी सुस्थिर सामंजस्य रहे। यहाँ मानव मात्र के त्रिविध कष्टों से अभिप्राय समस्त प्रजा को शारीरिक, दैविक (प्रकृति या परिवेश जन्य) और भौतिक साधनों के अभाव जन्य कष्टों से मुक्ति से है, जो रामचरित मानस में इन शब्दों में व्यक्त है : ''दैहिक दविक भौतिक तापा राम राज काहूहि नहीं व्यापा''। योगक्षेम में योग से आशय है अप्राप्त की प्राप्ति (जो अब तक प्राप्त नहीं हुआ है उसकी प्राप्ति) एवं क्षेम का अर्थ है, जो प्राप्त हो गया, उसकी सुरक्षा। यहाँ पर योगक्षेम से आशय भी सम्पूर्ण समाज के न्यायोचित योगक्षेम से है। अमर्यादित उपभोग योगक्षेम नहीं कहा जा सकता है। जितने न्यूनतम वैयक्तिक उपभोग से विश्व के सभी व्यक्तियों की न्यायोचित भौतिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति बिना जीव सृष्टि के अन्य घटकों को उद्वेग दिये सुदीर्घ काल तक चल सके वही विकास है। इसीलिये श्री मद्भागवत पराण में कहा है कि ''यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं ही देहिनाम। अधिक योऽभिमन्येत स स्तेन दण्डंऽर्हति।।'' अर्थात जितने उपभोग से व्यक्ति की उदर पूर्त्ति हो जाये या उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो जाये उतने पर ही उसका अधिकार है, उससे अधिक पर अपना अधिकार जताने वाला व्यक्ति चोर है, जो दण्डित किये जाने का पात्र होता है। इसी कारण दैनिक बलिवेश्वदेव में विधान है कि प्रत्येक व्यक्ति उसके द्वारा अर्जित संसाधनो (व उपभोग्य सामग्रियों) से चींटी जैसे क्षुद्र प्राणी, कौआ, कबूतर आदि पखेरूओं, गौ व श्वान सहित सभी चौपायों सहित अभ्यागतों (कुछ भी प्राप्ति की आशा से उसके पास आने वाले मनुष्यों) के अधिकतम पोषण व उनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हेतु अपनी पूरी क्षमता से सहयोग करे। समाज की अपेक्षाओं की पूर्त्ति हेतु ही वेदों में उत्पादन में सभी प्रकार के अन्न धनादि प्रचुरताओ का निर्देश किया है। यथा ''गोधूमाश्चमे, माषाश्चमे, तिलाश्चमे, मुद्गाश्चमे.....''। अर्थात मेरे गेहुँ के भण्डार, उड़द के भण्डार, तिल के भण्डार, मूंग के भण्डार आदि सभी प्रकार के उत्पादकीय पदार्थों के उत्पादन व भण्डारों में प्रचुर वृद्धि होवे एवं होती रह। ऐसे सभी प्रकार के कृषि पदार्थों ही नहीं वस्त्र, रत्न, धातु, यान, जलयान, आदि अनगिनत वस्तुओं की प्रचुरता के कई मंत्र वेदों में हैं।

इसी क्रम में आज की भांति अनेक स्थानों पर पूंजी निवेश कर व्यवसाय कर लाभार्जन के भी अनेक मंत्र है। व्यवसाय के यह अभिवृद्धि दस गुने से अरबों गुने तक होने की कामना की गयी है। यथा' इमामे वेदों में अन्य बातों के साथ–साथ अत्यन्त समुन्नत व्यापार, वाणिज्य व उद्योगों के व्यवस्थित संचालन का विषद वर्णन है। प्राचीन काल में सम्भवतः व्यवसाय आज से भी अधिक उन्नत रहा है, इसलिये धन के लिये शब्दावली की दृष्टि से आज की तुलना में कहीं अधिक 60–70 प्रकार के धन व

पूंजी के वर्णन है। ऋग्वेद में सौ चप्पुओं वाले जलयान से व्यापारिक यात्राओं से लेकर सहस्त्र खम्भों के भवनों के भी उल्लेख आदि अति प्राचीन काल में भी हमारे यहाँ उन्नत व वृहद स्तरीय व्यापार, वाणिज्य व उद्योगों के प्रमाण प्रचुरता में उद्धृत है।

(ब) विकेन्द्रित उत्पादन व पूर्ण रोजगार का निर्देश : हमारे प्राचीन शास्त्रों में ऐसे संसाधन जिनका नवीनीकरण या पुनर्जनन सम्भव नहीं है उनका अत्यन्त मर्यादित उपयोग के निर्देश है। वेदों में विकेन्द्रित उत्पादन व सबको रोजगार के अवसर ऐसी पूंजी से अधिकांश परिवार स्वावलम्बी हो यह अपेक्षा ऋग्वेद, अथर्ववेद व कई नीति ग्रन्थों में है। इसीलिये ऋग्वेद में परिवार की उत्पादकीय सम्पत्ति को पूंजी कहा गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि, किसी भी परिवार को उसकी उस पूंजी से किसी भी स्थिति में वंचित नहीं किया जाय। इसका उद्देश्य था कि राज्य में विकेन्द्रित उत्पादन से अधिकांश परिवारों को स्व–रोजगार सुलभ हो सके।

विकास के भारतीय अर्थ चिन्तन में व्यापक रोजगार को प्राधान्यता दिये जाने के कारण ही अर्थ शास्त्र की चाणक्य की अर्थशास्त्र की परिभाषा आज भी सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध होती है। चाणक्य के रचित कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार मनुष्य मात्र अर्थात सभी प्रजाजनों को जीवन वृत्ति प्रदान करने के शास्त्र को ही अर्थशास्त्र कहा है। चाहे स्व रोजगार हो या कोई व्यक्ति कहीं भी भृत्ति अर्थात वेतन या मजदूरी के बदले सेवा दे, उसकी भृत्ति अर्थात मजदूरी या वेतन इतना होना अपेक्षित है कि उस पर आश्रित सभी परिवारजनों का भरण पोषण हो सके। यथा ''अवश्यपोष्य भरणं भृत्तिकाद्भवेत'' याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार व्यक्ति को इतना पारिश्रमिक प्रदान करना ही चाहिये कि वह उस पर अवलम्बित उसके सभी परिवारजनों का पोषण कर सके। हिन्दु अर्थ चिन्तन में आज के अर्थशास्त्र के सभी अंगो यथा उपभोग, उत्पादन, मूल्य, आय, किराया व लोकावित्त आदि का सांगोपांग एवं अत्यन्त समन्वित विवेचन है। मांग व पूर्त्ति के अनुरूप मूल्यों मे उतार चढ़ाव से लेकर मूल्य नियन्त्रण हेतु पण्य विचक्षणा जैसे 'मूल्य निर्धारण मण्डल' तक की व्यवस्थाओं के साथ–साथ करारोपण के सिद्धान्तों का भी समुचित विवेचन हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मिल जाता है।

यथा शुक्र नीति में करारोपण के सिद्धान्तों के रूप में कहा है कि जिस प्रकार मधुमक्खी द्वारा पुष्पों से पराग एकत्र करने पर पुष्प को कोई पीड़ा नही होती उसी प्रकार राजा को भी कर संग्रह इस प्रकार करना चाहिये की प्रजा को कर चुकाने में कष्ट नहीं हो।

(स) आज की अर्थरचना में एकात्म दर्शन के सूत्र : व्यष्टि से समष्टि पर्यन्त अर्थ पुरूषार्थ अर्थात् अर्थ व्यवस्था के सचालन में एकात्मकता परम आवश्यक है आज की हमारी अधिकांश आर्थिक समस्याओं का कारण ही अर्थ व्यवस्था के संचालन में एकात्म दृष्टि का अभाव है। इस दृष्टि से निम्न बिन्दु विशेष विचारणीय है :–

(i) **समावेशी विकास के लिये विकेन्द्रित उत्पादन** – प्रक्रिया व आर्थिक प्रणाली–स्वदेशी व स्वावलंबन हेतु देश में कृषि, लघु उद्योग, ग्रामोद्योग की सहभागिता युक्त उत्पादन तत्र ही हमारी वृहद जनसंख्या के योगेक्षेम की व्यवस्था कर सकता है। देश तीन चौथाई से अधिक जनसंख्या अनिगमित व अनौपचारिक अर्थ तत्र में नियोजित है। उसको दृष्टिगत रख कर आथिक नीतियाँ व प्रणाली का चयन आवश्यक है।

(ii) पारिस्थितिकीय संतुलन व पर्यावरण की मर्यादाओं के अनुसार पर्यावरण सहिष्णु उत्पादन, इस दृष्टि से रोजगार सृजनकारी प्रौद्योगिकी जो नवकरणीय (तमदमूंइसम) साधनों पर अवलम्बित हो उसके विकास पर बल देना।

(iii) मूलभूत आवश्यकताओं (भोजन, समुचित पोषण, कपड़ा, मकान, रक्षा, शिक्षा व स्वास्थ्य) की सम्यक पूर्त्ति की सुविधाएँ व अनुकूल परिवेश।

(iv) धारणक्षम व संयमित उपभोग एवं भविष्य की आवश्कतओं के आलोक में उपभोग व उत्पादन तंत्र का विकास

(v) एकाधिकारी बाजार व अधिकतम लाभ केन्द्रित चिन्तन के स्थान पर समाज–हित केन्द्रित अर्थचिन्तन–अर्थरचना में व्यक्ति को गरिमापूर्ण स्थान मिले। गला काट स्पर्द्धा के स्थान पर समावेशी उत्पादन व विकास तत्र की रचना

(vi) **अर्थायाम** – अर्थ का अभाव नहीं, अर्थ का प्रभाव भी नहीं होना चाहिये। अर्थ के उत्पादन, वितरण व भोग में संतुलन होना चाहिये।

(vii) **विकेन्द्रित नियोजन** – एक सौ पच्चीस करोड़ जनसंख्या वाले देश में साम्यवादी व्यवस्था के प्रतीक केन्द्रीकृत नियोजन से समावेशी (inclusive) विकास एवं धारणक्षम वृद्धि (sustainable growth) संभव नहीं है। इसलिये ग्राम व कस्बों में उपलब्ध संसाधनों व उनकी आवश्यकताओं के आधार पर विकेन्द्रित नियोजन ही श्रेयस्कर है।

(viii) **कृषि में प्राकृतिक संतुलन के साथ सम्यक आधुनिकता** – असंतुलित रासायनिक सघनता वाली कृषि में जहाँ पोषक तत्वों के असंतुलन से जहाँ भूमि बंजर हो रही है। वहीं कीटनाशकों के विवेकहीन दुरूपयोग और जी.एम. फसलों व जी.एम. खाद्य से स्वास्थ्य के लिये गम्भीर चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही है। देश में पर्याप्त जल संसाधनों के होते हुए भी खेती युक्त जमीन का 1/3 क्षेत्र ही सिंचित है। कृषि में पर्याप्त सार्वजनिक निवेश के अभाव में कृषि उत्पादकता वैश्विक औसत की मात्र एक तिहाई है। इसलिये देश में बड़ी संख्या में किसान आत्महत्या कर रहे हैं, अतएव कृषि में उचित निवेश, सम्यक प्रौद्योगिकी एवं जैविक कृषि तकनीकों का उपयोग करते हुए प्राकृतिक संतुलन के साथ कृषि पर आधारित देश के आधे से अधिक जनसंख्या के समुचित योगक्षेम पर ध्यान देना चाहिये।

(ix) **सम्यक आर्थिक संतुलन** – बजट में बढ़ते राजकोषीय घाटे और विदेश व्यापार और चालु खाता घाटे पर पूर्व नियंत्रण किया जाना चाहिये।

(x) **समन्वित कराधान** – सभी प्रकार के करों (Taxes) की संरचना तर्कसंगत एवं विवेकपूर्ण होनी चाहिये।

(xi) **उचित प्रौद्योगिकी का विकास** – देश की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वदेश में विकसित उत्पादों के निर्माण के लिये उचित प्रौद्योगिकी का विकास और अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा के लिये अगली प्रौद्योगिकी का संवर्धन होना चाहिये।

(xii) **स्वावलम्बी विकास** – अर्थव्यवस्था विदेशी पूंजी पर निर्भर होने के स्थान पर आन्तरिक संसाधनों पर निर्भर होनी चाहिये।

(xiii) **उचित आर्थिक नीतियाँ** – देश की औद्योगिक व्यापार सम्बन्धी मौद्रिक, राजकोषीय, वित्तीय सेवाओं और वित्तीय बाजारों से सम्बन्धित सारी आर्थिक नीतियाँ देश को स्वावलम्बी व प्रगत बनाने वाली होनी चाहिये।

(xiv) **रोजगार** – सम्पूर्ण अर्थतंत्र का संचालन प्रत्येक सक्षम व्यक्ति को रोजगार प्रदान करने वाला होना चाहिये, जिसमें स्वरोजगार और अधिकाधिक बल दिया जाना चाहिये।

(xv) अवसंरचनाओ व जनोपयोगी सेवाओं का समुचित विकास एवं उनकी सर्व सुलभता

(xvi) **वैश्विक आर्थिक रचना** – विश्व में विद्यमान सभी 200 से अधिक देशों की प्रजाओं की सभी आवश्यकताओ की पूर्ति उचित रूप से हो सके और बिना किसी एकाधिकारी शोषण के उनका योग क्षेम सुनिश्चित हो ऐसी आर्थिक रचनाओं का विकास। सभी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों यथा UNO, IMF, World Bank, आदि का संचालन भी एकात्म दर्शन के आधार पर होना चाहिए।

एकात्म मानव दर्शन की संकल्पना

एकात्म मानव दर्शन में व्यक्ति से परमेष्ठी पर्यन्त सभी अगांगी अवयवों अर्थात व्यक्ति, परिवार, समाज, समुदाय, ग्राम, नगर, राष्ट्र, विश्व, सृष्टि, समष्टि और परमेष्ठी के बीच सामंजस्य, सहकारिता एवं एकात्मता के प्रवर्तन–पूर्वक परिपूर्णता के लक्ष्य की प्राप्ति का चिन्तन है। व्यक्तित्व की आन्तरिक सुसंगतता, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि व अन्तरात्मा में एकात्मता अभिप्रेत है, ऐसे एकात्म व्यक्ति को जीवन के ध्येय रूपी चारों पुरूषार्थों यथाः धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति हेतु यदि इस प्रकार अग्रसर किया जाये कि उससे राष्ट्र व प्रकृति से सामजस्य पूर्वक सुव्यवस्था विकसित हो एवं वह सतत व सहज चलती रहे।

भारतीय संस्कृति व दर्शन, व्यक्ति की अन्तर्निहित (शरीर, मन बुद्धि व आत्मा की) एकता, व्यक्ति से विश्व पर्यन्त सभी अगांगी घटकों (व्यक्ति, परिवार, समाज, समुदाय, राष्ट्र, विश्व, सृष्टि या समष्टि व परमेष्ठी) की एकता व परस्पर अवलम्बन और व्यक्ति के जीवन के उद्देश्यों, जिन्हें हम धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के रूप में पुरूषार्थ चतुष्ठय भी कहते हैं उन सबके बीच सुसमन्वय के प्रबल पक्षधर है। इसलिये देश की अर्थनीति (कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, सेवाओं जन–उपयोगिताओं अवसंरचनाओं, विदेशी पूंजी, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समझौतों सम्बन्धी नीति) शिक्षा, राजनीति, शासन व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, जीवन मूल्य, सामाजिक व संस्थागत व्यवहार, संविधान, कानून, विधायिका व कार्य पालिका का व्यवहार सम्बन्धी विविध नीतियाँ, न्याय, प्रशासन आदि सम्बन्धी नीतियों का निरूपण व उनके संचालन में उक्त एकात्मता व अन्योन्याश्रयता को दृष्टिगत रखना होगा। सम्पूर्ण देश, समाज व विश्व के मन मानस में इस एकात्मता का भाव एवं इनके सभी व्यवहार तद्नुरूप हो ऐसी राष्ट्र व विश्व की चिति या समग्र चिन्तन, दर्शन व मूल्य हों, यह एकात्म मानव दर्शन के व्यवहार की आदर्श स्थिति है। व्यक्ति व उस विराट ब्रह्म में एकत्व ही हमारा जीवन ध्येय होना है।

व्यक्ति व समष्टि में एकात्मता :

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि एकात्म मानव दर्शन मानव की परिपूर्णता से लेकर हमारी पारिवारिक, सामाजिक सामुदायिक, राष्ट्रीय एवं वश्विक परिपूर्णता की अपेक्षा करता है और सृष्टि में ऐसी परिपूर्णता की स्थापना प्रेरणा देता है। व्यष्टि से समष्टि पर्यन्त इस परिपूर्णता की प्राप्ति के लिये एकात्म मानव दर्शन सर्वंकश एकात्म विश्व दृष्टि की बात करता है। इस विचार दर्शन के अनुसार व्यष्टि से समष्टि पर्यन्त खण्ड–खण्ड या टुकड़ों–टुकड़ों में विकास की बात नहीं सोची जा सकती है। वरन् व्यष्टि से समष्टि पर्यन्त सभी अंगों पर समग्र व एकात्मकवादी दृष्टि से उनके विकास व उनकी परिपूर्णता व समन्वन का विचार किया जाना चाहिये। इस दृष्टि से इन सभी घटकों के बीच पारस्परिक समन्वय सामंजस्य आवश्यक है, जिस अग्रांकित चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

यदि व्यक्ति स्वयं को सम्पूर्ण वैश्विक संरचना के एक अंगागी घटक के रूप में मानकर चलता है, तब ऐसी स्थिति में हमारे सारे व्यवहार पर्यावरण व समाज के प्रति सहिष्णुता पूर्ण होंगे। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, जीव–सृष्टि और परमेष्टी परस्पर अवलम्बित हैं। इन सबके बीच परस्पर संबन्धों को दृष्टिगत रखते हुए ही विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को अपना उपभोग व जीवन–चर्या निश्चित करनी चाहिए। प. दीनदयाल जी के इस विचार के अधीन प्रत्येक व्यक्ति को यह विचार मन में रखना चाहिये कि, वह स्वयं कोई स्वायत्त या सम्प्रभु इकाई नहीं होकर वह अपने परिवार व समाज का अंग है। प्रत्येक

परिवार, अपने समाज या समुदाय का अंग है। समाज, या समुदाय राष्ट्र का अंग है। राष्ट्र विश्व का, विश्व इस सम्पूर्ण सृष्टि का, और यह सृष्टि उस परमेष्टी का अंग है जो इस सम्पूर्ण व अनन्त ब्रह्माण्ड में संव्याप्त या विस्तारित है। इसलिये हमारा उपभोग इन सभी घटकों के बीच समन्वय पर आधारित होना चाहिये। लेकिन ये सभी परस्पर संलग्न भी हैं। निम्न चित्र 1 में इन्हें अलग–अलग दर्शाया है यह संकेन्द्री रचना भी पाश्चात्य खण्ड दृष्टि को दिखलाती है।

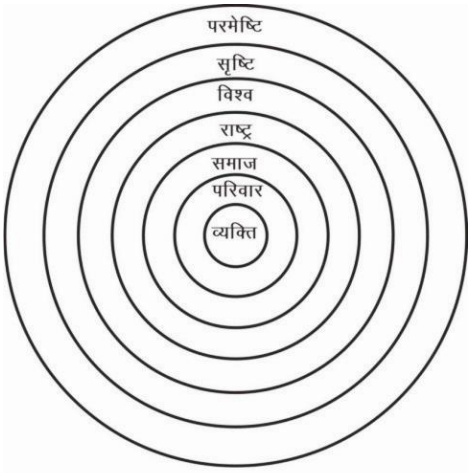

चित्र 1: पाश्चात्य संकेन्द्री दृष्टि

वस्तुतः मानव, परिवार, समाज, विश्व आदि के रूप में ये वलय भी पृथक–पृथक या खण्ड–खण्ड पृथकता वाले घटक न होकर एक ही समेकित इकाई के परस्पर अवलम्बित व अविच्छिन्न घटक हैं। इन्हें, एकात्म मानव दर्शन के भारतीय चिन्तन की व्याख्या करते हुये, स्व. दीनदयाल जी उपाध्याय ने निम्नानुसार अखण्ड मण्डलाकार रूप में दर्शाया है।

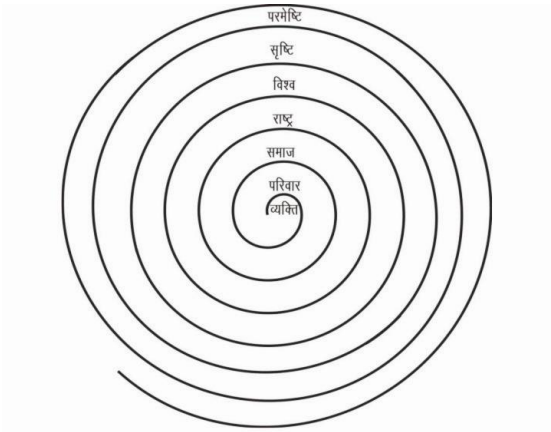

चित्र 2 : भारतीय विचार आधारित अखण्ड मण्डलाकार प्रस्तुति

इस प्रकार व्यक्ति यदि समष्टि से एकात्मकता का अनुभव कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हेतु न्यूनतम ग्रहण करें और वह भी केवल नवकरणीय साधनों से तब ही यह सृष्टिक्रम अनवरत निर्बाध जारी रहेगा।

View publication stats